International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 407-409

द्वितीय शताब्दी ई० में शूद्रों की स्थिति

चन्द्रोदय सिंह
प्राचीन इतिहास एवं पुरात्व विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय वर्ण–व्यवस्था का प्रारम्भ अति प्राचीन समय से ही देखने को मिलता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र शब्द भी समाहित है। धर्मशास्त्रों में उनका प्रमुख कर्त्तव्य द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा बताया गया है। प्रारम्भ में इस वर्ग के लोगों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था जो शिल्पी के रूप में था। इस वर्ग के लोग द्विजातियों के समान पंचमहायज्ञ भी किया करते थे।[1] लेकिन बाद में चलकर समाज में उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाने लगा और वे समाज से बहिष्कृत कर दिये गये।

ऋग्वेद में प्रतिपादित चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त की अनवरत रूप से धर्मशास्त्रों में पुनरावृत्ति होती रही। पूर्वमध्यकालीन व्यवस्थाकारों ने भी इस सोपानिक वर्ण–क्रम का उल्लेख किया है। शूद्रों के उत्पत्ति विषयक दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि शूद्र वर्ण भारतीय समाज का चतुर्थ और निम्नतम अंग था। धर्म सूत्रों में इनके लिए अनाथ[2] शब्द प्रयुक्त है।

धर्म सूत्रों में दण्ड विधान के अन्तर्गत शूद्रों की कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की गयी थी, लेकिन उनकी हत्या करने वाले पर वही प्रायश्चित्त निर्धारित था जो एक बिल्ली, नेवला, चाष पक्षी, गोह, उल्लू और कौवे की हत्या का था।[3] वैदिक मन्त्रों के श्रवण मात्र से उसके कान में पिघला सीसा तथा उच्चारण करने पर उनकी जिह्वा काटने का निर्देश दिया गया था।[4] मनु ने आजीविका के अभाव का बहाना लेकर उन्हें क्षत्रिय या वैश्यों का कार्य करने की बात कही है।[5] कभी–कभी वे लोग कृषि भी करते थे। मनुस्मृति में एक बात हमें दिखती है? कि शूद्र राजा बनने की क्षमता रखते थे लेकिन मनु ने शुद्र राजा के राज्य में निवास का निषेध किया है। शूद्रों का धनिक होना भी स्मृतिकारों को अच्छा नहीं लगा है, उन्होंने धनवान् शूद्र को ब्राह्मणों के मार्ग में बाधक बताया है। इस प्रकार धर्मसूत्रों के काल में और प्रारम्भिक स्मृतियों में शूद्रों की अत्यन्त हेय और निकृष्ट स्थिति ध्वनित होती है। पतंजलि ने शूद्रों की दो कोटियाँ कर दीं–पहला निरवसित और दूसरा अनिरवसित। महाभारत काल से शूद्रों की दशा में कुछ सुधार संकते मिलते है।[6]

द्वितीय शती ई0 में एक पृथक इकाई के रूप में शूद्रों को दिखाया गया है। इस काल में कारीगरों के महत्व में वृद्धि हमें दिखायी देने लगती है। द्वितीय शती ई0 में एक परिवर्तन हम देखते हैं कि जो पहले से परम्परा चली आ रही थी वह अब टूट रही थी। और शिल्प कर्म शूद्रों के सामान्य कर्म में शामिल हो गया था।[7] बृहस्पति ने शिल्प का अर्थ बताया है, सोने, हीन धातु, काष्ठ, धागे, पत्थर और चमड़े का काम।[8] अमरकोश में शिल्पियों की सूची शूद्र वर्ग में है, इसमें सामान्य शिल्पियों, उसके संघ (श्रेणी) के प्रधानों, मालियों, धोबियों, राजमिस्त्रयों, जुलाहों, दर्जियों चित्रकारों, शास्त्रकारों चर्मकारों, लुहारों, शंख–शिल्पयों और ठठेरों में प्रत्येक के दो नाम है।[9] इस सूची में स्वर्णकार के चार नाम ओर बढ़ई के पांच नाम है। अमरकोश में ढोल बजाने वाले, पानीवाले, वंशी और वीणा बजाने वाले, अभिनेता, नर्तक और कला बाज इन सभी का समावेश भी शूद्र वर्ग नामक प्रकरण में किया गया है। इस सूची से सिद्ध होता है कि शूद्र सभी प्रकार के शिल्पों और कलाओं का व्यवसाय करते थे।[10]

शूद्र राजाओं की चर्चा भी इस काल में ही देखने को मिलती है। इसी समय सौराष्ट्र, अवंति, अबुर्द और मालवा, इनके साथ–साथ परम्परागत शूद्र, आभीर और म्लेच्छ राजाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो सिन्धु और कश्मीर प्रदेशों में शासन करने वाले बताए गये है। पार्जिटर ने इनका समय चौथी शताब्दी ईस्वी बताया है।[11]

विभिन्न वर्गों अथवा वर्णों के बीच कर्तव्य और व्यवसाय की दृष्टि से जो विभेद और विभाजन किये गये थे, उनका प्रभाव जातिरूप धारण करने के बाद पारस्परिक सम्बन्ध पर पड़ना अनिवार्य था। इसका प्रभाव दैनिक जीवन पर किस रूप में पड़ा, इसका उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया जा सकता, लेकिन इतना कहा जा सकता है कि विवाह और खान–पान को इसने अवश्य प्रभावित किया। प्रारम्भ में चारों वर्णों में पारस्परिक विवाह होते थे, उसमें किसी प्रकार का कोई बाधा नहीं थी लेकिन अन्तर्वर्ण्य विवाह के दो भेद हमें दिखायी देते हैं। उच्च वर्ण का व्यक्ति अपने वर्ण के अलावा अपने से निम्न वर्ण में विवाह कर सकता था।[12] इस प्रकार के विवाह को अनुलोम विवाह कहा जाता अनुलोम विवाह को अच्छे नजरिए से देखा जाता था इसे बुरा नहीं माना जाता था। वशिष्ठ–स्मृति में मिलता है कि ब्राह्मण के अन्य तीन वर्ण की स्त्रियों से जन्मे पुत्र, समान रूप से दाय के अधिकारी हो सकते थे। मनु भी उन्हें ब्राह्मण ही कहा है। परन्तु गुप्त काल तक आते–आते इस तरह की व्यवस्था में बदलाव आना प्रारम्भ हो गया। वृहस्पति ने इस उत्तराधिकार व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए दिखायी देते हैं। इस अनुलोम विवाह के विपरीत प्रतिलोम विवाह अर्थात् उच्च वर्ग की स्त्री निम्न वर्ण के पुरूष का विवाह हेय माना गया और समाज में इसे किसी प्रकार की मान्यता नहीं प्रदान की गयी। अनुलोम और प्रतिलोम विवाह के प्रति स्मृतिकारों के इस तरह के दृष्टिकोण के बावजूद भी दोनों प्रकार के विवाह राजघारानों के बीच सम्पन्न होते थे, इस प्रकार का उदाहरण गुप्त–वंश में हम देख सकते हैं। वैश्य गुप्त–वंश की राजकुमारी (चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री) का विवाह वाकाटकवंशी रूद्रसेन से हुआ था।[13] इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय की पत्नी कुबेरनागा नाग कन्या थी और नाग क्षत्रिय कहे गये है। इस प्रकार यह वैश्य–क्षत्रिय प्रतिलोम विवाह का उदाहरण है। द्वितीय शती ई0 में हमे कई शिक्षित शूद्रों के उदारण दिखाई पड़ते है। याज्ञवल्क्य के एक श्लोक से प्रकट होता है कि भृतकों के लिए भी अध्यापक होते थे। मृच्छकटिक में न्यायाधीश शकार को फटकारता है– ''अरे नीच, तुम वेद की बात कर रहे हो, और तब भी तुम्हारी जीभ नीचे न गिरी ''विद्वान शूद्रों का अस्तित्व वज्रसूची से भी प्रमाणित होता है, जिसमें वेद, व्याकरण, मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक, लग्न आदि शास्त्रों के ज्ञाता शूद्रों की चर्चा की गयी है।

शूद्रों को धर्म–कर्म का अधिकार नहीं है, इस तरह की पुरानी मान्यता इस काल में भी दुहरायी गयी है। इसमें यह तर्क दिया गया है कि ऊपर के तीन वर्णों की सेवा ही शूद्रों के लिए यज्ञ कर्म है।[14] इसी दृष्टि से नारद ने कहा है कि अभिषेक जल नास्तिकों, व्रात्यों और दासों को न दिया जाए।[15] परन्तु विष्णु ने कहा है कि कुछ परिस्थितियों में शूद्र को अभिषेक द्वारा दिव्य करना पड़ता है।[16] मार्कण्डेयपुराण में बताया गया है कि दान देना और यज्ञ करना शूद्र का कर्तव्य था।[17] इसमें संदेह नहीं कि शूद्रों को पंच महायज्ञ करने की छूट दी गई है। मनु ने स्पष्टतया ऐसा नहीं कहा है, लेकिन याज्ञवल्क्यय ने साफ कह दिया है कि शूद्र 'ओंकार' के बदले नमः का प्रयोग करते हुए पंच महायज्ञ कर सकते है।[18]

मूर्ति बनाने के लिए एक वैष्णव ग्रंथ में कहा गया है कि सभी जातियों के लोग मूर्ति बना सकते हैं। इससे प्रकट होता है कि शूद्र भी मूर्तियाँ बनाकर उन्हें पूज सकते थे और इनकी मूतियाँ भी उसी वस्तु की होती थी जिसकी अन्य वर्णों के लोगों की होती थी। लेकिन इस काल के अन्य ग्रन्थ में मूर्ति बनाने के लिए लकड़ी चुनने में वर्गमूलक विभेद विहित किया गया है, और तद्नुसार चार वर्णों के लिए क्रमशः चार प्रकार की लकड़ी बताई गई है।[19] एक द्वितीय शताब्दी ई0 कालीन वैष्णव उप पुराण में इसी तरह का नियम आया है, जिसमें कहा गया है कि मंदिर और मूर्ति बनाने में श्वेत काण्ठ ब्राह्मणों के लिए शुभ है, लाल क्षत्रियों के लिए पीला वैश्यों के लिए और काला शुद्रों के लिए।[20] मूर्ति बनाने में इसी ग्रंथ में चारों वर्णों के लिए क्रमशः इन्ही चार वर्णों के पत्थर विहित किए गये थे। लकड़ी और पत्थर के चुनाव में वर्ण विभेद के रहते हुए भी, प्रतिमाविज्ञान विषयक ग्रंथों के अवलोकन में इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि शूद्र भी मूर्ति बना सकते थे और उसकी पूजा कर सकते थे।

गृह्यसूत्रों के अनुसार श्राद्ध कर्म शूद्रों के लिए विहित नहीं थे, किंतु इस काल के ग्रंथों में यह कार्य शूद्रों के लिए स्पष्टयता विहित किया गया है।[21] शूद्र साधारण श्राद्ध तो कर ही सकता है।[22] जो शूद्र सत्य और ईमानदारी पर चलता है, मंत्र और ब्राह्मण का आदर करता है और दान देता है, वह स्वर्ग जाता है और अगले जन्म में ब्रह्मण होता है। वेश्याओं के लिए विहित अंग दान नामक विशेष व्रत में यह विधान किया गया था कि वेश्या जो सामान्यतया शूद्र जाति की मानी जाती थी। गोदान लेते समय ब्राह्मण वैदिक मंत्र पढ़ते थे। लीलावती नामक शैव वेश्या और एक शूद्र सुनार को दान दिये, जिसके फलस्वरूप मृत्यु के बाद वेश्या को शिवलोक (शिवमंदिर) मिला और सुनार मूर्ति नामक सम्राट हुआ। ईसवी सन् की पांचवीं शताब्दी के एक बौद्ध टीका ग्रंथ में ऐसे कम से कम एक दर्जन उदाहरण आये हैं जहाँ निम्न वर्णों के लोगों ने बुद्ध भिक्षुओं या संघ को दान देने के फलस्वरूप स्वर्ग का आनन्द और बौद्ध विमानों का सुखभोग प्राप्त किया। इस प्रकार दान का सिद्धांत बौद्ध और ब्राह्मणीय, दोनों धर्मों में समान था। यज्ञ व्रत, श्राद्ध तथा अन्य कर्मों का अनुष्ठान जो शूद्रों के लिए विहित किया गया था, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन कार्यों में ब्राह्मणों को नियोजित करते होंगे, जो इन अवसरों पर किया गया दान ग्रहण करते होंगे। शूद्रों द्वारा किये जाने वाले इन कर्मों में पुरोहित का काम करने वाले ब्रह्मणों (शूद्र याजकों) की जो बार–बार निंदा की गई है।[23] उससे इन पुरोहितों के विरूद्ध परम्परागत पूर्वग्रह प्रकट हो होता ही है, साथ ही यह भी ध्वनित होता है कि इन कर्मों में ब्राह्मणों को नियोजित करने की प्रथा अधिकाधिक प्रचलित होती जाती थी। मनु ने जिस तरह शूद्र पुरोहितों की निंदा की है। वैसा याज्ञवल्क्य ने नहीं किया है। बौद्ध धर्म के महारती जन्मूलक वर्णभेद का खंडन तो कर ही रहे थे इसके अतिरिक्त कई सुधारवादी विचाराधाराओं, विशेषकर वैष्णव संप्रदाय का उदय हुआ जिससे बहुत हद तक शूद्रों को धार्मिक समता प्राप्त हुई। वैष्णव धर्म द्वितीय शताब्दी ई0 में विकास की चोटी पर पहुँच गया था। महाभारत और पुराणों में इस सम्प्रदाय के जो सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, उनसे प्रकट होता है कि ब्राह्मण धर्म की प्राचीन कट्टरपंथी परम्परा की भांति इस वैष्णव सम्प्रदाय ने शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए अपना द्वार बंद नहीं रखा बल्कि उन्हें भी ईश्वर को जानने और मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार दिया। वैष्णव ग्रंथों में इस बात हमेशा जोर डाला जाता रहा कि कृष्ण, नारायण या वासुदेव की भक्ति के द्वारा स्त्रियाँ और शूद्र भी मुक्ति पा सकते हैं।[24] भगवान को यह घोषित करते हुए चित्रित किया गया है कि ब्राह्मण से लेकर श्वपाक तक सभी मेरी भक्ति से पवित्र हो जाते है। श्रद्धालु और भक्त श्वपाक भी मुझे उस ब्राह्मण से प्रिय है जो अन्य गणों से सम्बन्धित रहने पर भी भगवान का भक्त नहीं है। यदि अन्त्यज एक बार भी ईश्वर का नाम लेता है तो वह जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है। यह कहा गया है कि वेदज्ञ ब्राह्मण पुण्यवान शूद्र को विश्व के दीप्तिमान देव विष्णु जैसा ही मनाते है और संसार में सर्वोत्तम भी मानते है।[25] जो व्यक्ति विष्णु भक्त शूद्र का अपमान करता है, वह करोड़ वर्ष तक नरक भोगता है।[26] इसलिए ज्ञानवान व्यक्ति को विष्णुभक्त चंडाल का भी अपमान नहीं करना चाहिए।[27] विष्णु भक्ति के द्वारा राजन्य विजय पाते हैं, ब्राह्मण विद्या पाते हैं, वैश्व धन पाते हैं और शूद्र आनन्द पाते हैं।

द्वितीय शदीं में शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में वृद्धि और कई कर्मानुष्ठानों के विषय में उन्हें तीनों उच्चवर्गों की समकक्षता मिली। ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि शूद्रों के आध्यात्मिक उत्थान के पीछे ब्राह्मणों का स्वार्थ काम कर रहा था, क्योंकि वे चाहते थे कि अधिक से अधिक लोग ब्राह्मणीय कर्मों का अनुष्ठान करें किंतु पूर्वकाल में भी तो ब्राह्मणों का ऐसा स्वार्थ रहा होगा, जबकि ऐसी प्रवृत्ति का अभाव बहुत कम मिलता है। वास्तव में शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में वृद्धि उनकी भौतिक स्थिति में भी परिवर्तन के कारण हुई। इसकी बदौलत से पुरोहितों को समुचित दक्षिणा देकर संस्कार और यज्ञ कराने मे समर्थ हुए, क्योंकि यज्ञ कराने की योग्यता व्यय वहन क्षमता के साथ निकटततः सम्बद्ध मानी जाती थी, जो स्वाभाविक ही है।[28] सामान्यतः कह सकते है कि गुप्तकाल में शूद्रों की धार्मिक प्रतिष्ठा में जो सुधार हुआ, उसकी तुलना मिस्त्र के मिडल किंगडम के आरम्भ में हुए घटनाक्रमों से कर सकते है। जब केवल फेरों और सामंतों में प्रचलित कई अंतिम संस्कार सम्बन्धित कर्म साधारण जनों में भी प्रचलित हुए। इसके साथ उनकी आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ था। जो बात द्वितीय शताब्दी ई0 में शूद्रों की स्थिति के विषय में सही प्रतीत होती है।

उपसंहार

इस प्रकार यह कहा जा सकता है द्वितीय शदीं ई0 में शूद्रों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। इस काल में शूद्र और वैश्व एक समान धरातल पर आ गये थे। इस युग की प्रारंभिक पराशर–स्मृति में सामान्यतः वैश्व तथा शूद्र दोनों के लिए कृषि, व्यापार और शिल्प कार्य करने के निर्देश से स्पष्ट हो जाता है कि इनके बीच की खाई अवश्य कम हुई थी। इस युग में यह भी देखने को मिला है कि जो शूद्र मजदूरी करते थे उनकी मजदूरी की दरे भी बढ़ी। इसी युग में मजदूर लोग धीरे–धीरे बटाईदार और किसान होते जा रहे थे। सातवीं सदी तक शूद्र बड़े पैमाने पर किसान के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। इस युग में संकट की घड़ी में शूद्रों को शस्त्र उठाने पर का भी अधिकार मिल गया था। यह परिवर्तन शूद्रों की राजनीतिक सहविधिक स्थिति में व्यापक रूप से प्रतिफलित हुआ है। वर्ण

विषयक कानूनों में कुछ ढिलाई आयी और शूद्रों के प्रति बरते जाने वाले कई निष्ठुर नियम रद्द कर दिये गये। शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में काफी वृद्धि हुई। शूद्रों को रामायण, महाभारत और पुराण सुनने का और कभी–कभी वेद सुनने का भी अधिकार भी दे दिया गया था। अतः निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि द्वितीय शताब्दी ई0 में शूद्रों की स्थिति में जो, आर्थिक, राजनीतिक, सहविधिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए, वे उक्त समुदाय की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के द्योतक है।

सन्दर्भ

1. विष्णुस्मृति, 2.4,8,10, पृ. 12–13
2. गौतम धर्म सूत्र, 2.1.,61,पृ. 107
3. मनुस्मृति, 10.131,पृ. 599
4. गौतम धर्म सूत्र, 2.3.4, पृ. 118
5. मनुस्मृति,, 10.129, पृ. 565
6. महाभारत, 12.294, 2–4
7. विष्णुस्मृति, 2.4,8,10, पृ. 12–13
8. बृहस्पति, 13.33 (संपा0) आयंगर, के0वी0आर0 गायकवाड़, ओरियण्टल सिजीज, बड़ौदा, 1941
9. अमरकोश 2.10. 5–10 (शर्मा और सरदेसाई, एन0जी0 पूना 1941)
10. कामसूत्र (1.4.28, 2.12, 6.1.9) (वात्स्यायन कृत, यशोधर की जयमंगला
11. पार्जिटर 'डायनेस्टीज ऑफ दि कालिएज, पृ0 56 (एंशिएण्ट इण्डियन हिस्टीकल ट्रेडिशन, वाराणसी 1964)
12. वृद्धहारीतस्मृति, 7.181–2, पृ. 273
13. एपिग्राफिया इण्डिका, 15, पृ0 41, सम्पा0 (एफ0 डब्लू0 थामस, पुनरमुद्रित 1982, भारतीय पुरातत्व विभाग दिल्ली)
14. निर्णयसिंधु, पृ. 666
15. नारद स्मृति, 1.332, सम्पा0 जे0 जौली, कलकत्ता, 1885
16. विष्णु पुराण 9.10, होरेस हेमैन विल्सन (अनु0) पुन्थी पुस्तक, कलकत्ता 1972 (पुनर्मुद्रित)
17. मारकण्डेय पुराण, 28.7–8 (अनु0) एफ0ई0 पार्जिटर इण्डोलाजीकल, बुक हाउस, देलही 1904
18. याज्ञवल्क्य, 1.121, पृ.10
19. वृहत्संहिता (सुधाकर द्विवेदी संस्करण) 89. 5–6 (वराहमिहिर कृत, हिन्दी अनुवाद सहित, दुर्गा प्रसाद, लखनऊ, 1884)
20. विष्णुधर्मेत्तरमहापुराण, 3.10.2,
21. वायुपुराण, 2.12.49
22. मत्स्यपुराण, 17.63–64
23. ब्राह्मण्डपुराण, 3.15.44
24. रायचौधरी, दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट, पृ0 117–1920
25. भगवद्गीता, 9.32, चौखम्भा संस्कृत सीरीज प्रकाशन, वाराणसी, 1962
26. शांतिपर्व, 296. 28
27. आश्वमेधिकपर्व, (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 116.21
28. घुर्ये कास्ट एण्ड क्लास पृ0 15 (कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, बम्बई 1950)